IMPACT FACTOR 7.50 (SJIAI)

बिहार शोध समागम
BIHAR SHODH SAMAAGAM

Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 4, Issue 2, April-june, 2026
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
https://doi.org/10.5281/zenodo.20647616

ISSN : 3048-6971

"बिहार के 'सफेद सोना' का कोशी क्षेत्र में योगदान: मखाना उत्पादन, प्रसंस्करण और आर्थिक प्रभाव का अध्ययन"

अभिषेक कुमार आनन्द
शोधार्थी
अर्थशास्त्र विभाग
भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालू नगर मधेपुरा
abhishekrkanand1991@gmail.com

सार (Abstract)

मखाना (Euryale ferox Salisb.) भारत की एक अत्यंत महत्वपूर्ण जलीय फसल है, जिसे बिहार में 'सफेद सोना' के नाम से जाना जाता है। यह संज्ञा केवल प्रतीकात्मक नहीं है, बल्कि इसके पीछे लाखों किसान परिवारों की जीविका, पीढ़ियों की मेहनत और एक समृद्ध कृषि परंपरा का इतिहास छुपा हुआ है। विश्व के कुल मखाना उत्पादन का लगभग 85 से 90 प्रतिशत अकेले बिहार राज्य में होता है, और इसमें कोशी प्रमंडल की भूमिका केंद्रीय एवं निर्णायक है। प्रस्तुत शोध पत्र का मूल उद्देश्य कोशी क्षेत्र – विशेषतः सुपौल, सहरसा, मधेपुरा, दरभंगा एवं मधुबनी जिलों – में मखाना उत्पादन, प्रसंस्करण और उससे उत्पन्न आर्थिक प्रभावों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। यह क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से कोशी नदी की बाढ़ से आवृत रहता है, और विडंबना यह है कि यही बाढ़ का जल मखाना की खेती के लिए सर्वाधिक अनुकूल परिस्थितियाँ भी निर्मित करता है।

प्रस्तुत शोध विश्लेषणात्मक पद्धति (Analytical Method) पर आधारित है। उपलब्ध तथ्यों, प्रकाशित आँकड़ों एवं क्षेत्रीय साक्ष्यों का गहन विश्लेषण करते हुए मखाना की उत्पादन संरचना, मूल्य श्रृंखला, प्रसंस्करण की स्थिति तथा किसानों की आर्थिक दशा का मूल्यांकन किया गया है। तथ्यों की तुलना, कारण-परिणाम संबंधों की पहचान तथा नीतिगत निहितार्थों की व्याख्या इस पद्धति के केंद्र में है। अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष यह संकेत करते हैं कि मखाना उत्पादन इस क्षेत्र के कृषक परिवारों की आय का एक प्रमुख स्रोत है, किंतु परंपरागत प्रसंस्करण विधियों, मध्यस्थों के वर्चस्व, संस्थागत ऋण की अनुपलब्धता तथा अवसंरचनात्मक कमजोरियों के कारण किसान मूल्य श्रृंखला के लाभ से वंचित रह जाते हैं। GI Tag (2022) की प्राप्ति एवं सरकारी योजनाओं के बावजूद जमीनी स्तर पर रूपांतरण की गति अत्यंत धीमी है। यह शोध नीति निर्माताओं, शोधकर्ताओं एवं विकास संस्थाओं के लिए एक ठोस साक्ष्य-आधारित दस्तावेज प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द (Keywords): मखाना, कोशी क्षेत्र, सफेद सोना, मूल्य श्रृंखला, प्रसंस्करण, आर्थिक प्रभाव, ग्रामीण रोजगार, GI Tag, महिला सशक्तिकरण, कृषि विपणन, जलवायु परिवर्तन।

1. प्रस्तावना (Introduction)

भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ की विविधता केवल भाषा, संस्कृति या भूगोल तक सीमित नहीं है – यह विविधता हमारी फसलों में भी उतनी ही गहराई से समाई हुई है। इन्हीं विशिष्ट फसलों में से एक है मखाना, जिसे वानस्पतिक भाषा में Euryale ferox Salisb. कहा जाता है। यह एक जलीय पौधे का बीज है जो उथले जलाशयों, तालाबों और बाढ़ग्रस्त खेतों में उगता है। बिहार के किसानों ने सदियों पहले इस फसल की संभावना को पहचाना और

आज यही फसल उनकी पहचान बन चुकी है। इसे 'सफेद सोना' कहा जाना महज एक उपमा नहीं है – यह उन हजारों किसान परिवारों की उम्मीद का दूसरा नाम है जो प्रतिवर्ष इस फसल के भरोसे अपने घर चलाते हैं। कोशी क्षेत्र, जो उत्तर बिहार का एक महत्वपूर्ण भूभाग है, मखाना उत्पादन का ऐतिहासिक एवं भौगोलिक केंद्र रहा है। कोशी नदी – जिसे 'बिहार का शोक' भी कहा जाता है – प्रतिवर्ष इस क्षेत्र में बाढ़ लाती है और भारी तबाही मचाती है। परंतु इसी बाढ़ का जल जब खेतों और जलाशयों में ठहरता है, तो मखाना की खेती के लिए एक प्राकृतिक अनुकूलता तैयार हो जाती है। यह एक विचित्र और मार्मिक विरोधाभास है – जो नदी इस क्षेत्र के किसानों को सबसे अधिक तकलीफ देती है, वही उनकी सबसे मूल्यवान फसल की जननी भी है।

पोषण की दृष्टि से मखाना अत्यंत समृद्ध है। इसमें प्रोटीन, मैग्नीशियम, पोटेशियम, फॉस्फोरस तथा एंटी-ऑक्सीडेंट तत्वों की प्रचुरता होती है। आयुर्वेद में इसे शक्तिवर्धक एवं औषधीय गुणों वाला माना गया है। आज के स्वास्थ्य-सजग उपभोक्ता वर्ग में मखाना की माँग तेजी से बढ़ रही है – चाहे वह घरेलू बाजार हो या अमेरिका, यूरोप और खाड़ी देशों के अंतर्राष्ट्रीय बाजार। यही कारण है कि मखाना अब केवल एक स्थानीय फसल नहीं रहा, बल्कि यह एक वैश्विक उत्पाद बनने की राह पर है। वर्ष 2022 में मखाना को GI Tag (Geographical Indication) प्राप्त हुआ, जो इस फसल और इसे उगाने वाले किसानों के लिए एक ऐतिहासिक मान्यता थी। इस टैग ने न केवल मखाना की भौगोलिक विशिष्टता को कानूनी संरक्षण दिया, बल्कि इसके निर्यात की संभावनाओं को भी नई ऊर्जा दी। सरकारी स्तर पर भी राष्ट्रीय बागवानी मिशन, FPO गठन तथा ICAR-DRMR दरभंगा के शोध कार्यों के माध्यम से इस क्षेत्र में सुधार के प्रयास किए जा रहे हैं। प्रस्तुत शोध विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। इस पद्धति में उपलब्ध तथ्यों एवं साक्ष्यों की तार्किक व्याख्या, कारण-परिणाम संबंधों की पहचान तथा विभिन्न कारकों के परस्पर प्रभाव का मूल्यांकन किया जाता है। केवल आँकड़े प्रस्तुत करना इस शोध का लक्ष्य नहीं है, बल्कि यह समझना है कि वे आँकड़े किस वास्तविकता को दर्शाते हैं और उनके पीछे कौन-सी संरचनात्मक शक्तियाँ काम कर रही हैं। फिर भी जब हम जमीनी हकीकत देखते हैं – जब उन किसानों की स्थिति का विश्लेषण करते हैं जो भोर से पहले उठकर कमर भर पानी में उतरकर मखाना के पौधे तोड़ते हैं, जब हम उन महिलाओं की आर्थिक भूमिका को समझते हैं जो घंटों गर्म तवे के सामने बैठकर लावा भूनती हैं – तो एक गहरी विसंगति सामने आती है। इस पूरी मूल्य श्रृंखला में सबसे अधिक परिश्रम करने वाला किसान ही सबसे कम लाभ पाता है। मध्यस्थ, व्यापारी और प्रसंस्करण उद्योग वह मुनाफा उठाते हैं जिसका असली हकदार उत्पादक किसान है। यह शोध पत्र इन्हीं प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास करता है। यह उन संरचनात्मक समस्याओं का विश्लेषण है जो इस संभावना-सम्पन्न क्षेत्र के समग्र विकास में बाधक बनी हुई हैं, और साथ ही उन अवसरों की पहचान है जो सही नीति एवं हस्तक्षेप से इस क्षेत्र की तस्वीर बदल सकते हैं।

2. कोशी क्षेत्र में मखाना उत्पादन

कोशी क्षेत्र और मखाना का संबंध केवल एक कृषि उत्पाद और उसके उत्पादन स्थल का संबंध नहीं है – यह एक सभ्यता और उसकी जीवन-पद्धति का संबंध है। जब हम इस क्षेत्र के इतिहास में झाँकते हैं, तो पाते हैं कि मखाना की खेती यहाँ सदियों से होती आई है। प्राचीन काल में यह फसल मुख्यतः आत्मनिर्भरता के लिए उगाई जाती थी – धार्मिक अनुष्ठानों में, व्रत-उपवास में और औषधीय उपयोग में। धीरे-धीरे जब बाहरी दुनिया को इस उत्पाद की गुणवत्ता का परिचय हुआ, तो यह व्यावसायिक फसल बन गई। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, विशेषकर 1980 के दशक के बाद, जब ICAR और बिहार कृषि विश्वविद्यालय ने इस फसल पर शोध आरंभ किया, तब उत्पादन में संगठित वृद्धि देखी गई। आज कोशी प्रमंडल के सुपौल, सहरसा, मधेपुरा, दरभंगा और मधुबनी जिलों में लगभग 80,000 हेक्टेयर से अधिक क्षेत्रफल पर मखाना उगाया जाता है। उत्पादकता के आँकड़े भी उल्लेखनीय हैं। प्रति हेक्टेयर औसत उत्पादन लगभग 1.5 से 2 टन कच्चे बीज का होता है, जिससे लगभग 300 से 400 किलोग्राम तैयार लावा प्राप्त होता है।

जिलावार विश्लेषण करें तो दरभंगा और मधुबनी पारंपरिक रूप से सर्वाधिक उत्पादक जिले रहे हैं, जबकि सुपौल और सहरसा में बाढ़ की अनिश्चितता के कारण उत्पादन में उतार-चढ़ाव अधिक रहता है। मधेपुरा में भी पिछले दो दशकों में मखाना क्षेत्रफल में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

जलवायु और भूमि की दृष्टि से कोशी क्षेत्र मखाना के लिए स्वर्गिक अनुकूलता रखता है। मखाना को उथले, स्थिर जल वाले क्षेत्र चाहिए – जहाँ पानी की गहराई 0.5 से 1.5 मीटर हो। इस क्षेत्र की मिट्टी में उच्च कार्बनिक पदार्थ, दोमट एवं चिकनी मिट्टी का मिश्रण है जो पौधे की जड़ों के लिए आदर्श है। यहाँ की उच्च आर्द्रता, गर्म ग्रीष्मकाल और मानसून की प्रचुरता मखाना की वानस्पतिक वृद्धि को पोषित करती है।

कोशी बाढ़ का प्रश्न इस विश्लेषण में सबसे जटिल और मार्मिक पहलू है। जो नदी इस क्षेत्र के लोगों को प्रतिवर्ष उजाड़ती है, वही उनकी सबसे मूल्यवान फसल की संभावना भी जीवित रखती है। बाढ़ का जल जब खेतों और चौरों में ठहरता है, तो मखाना के लिए प्राकृतिक जलाशय तैयार हो जाते हैं। किंतु अत्यधिक बाढ़ की स्थिति में, जब जल स्तर तीन मीटर से अधिक हो जाता है, तो पौधे डूब जाते हैं और पूरी फसल नष्ट हो जाती है। यह किसान के लिए एक क्रूर जुआ है – वह प्रकृति की उसी शक्ति पर निर्भर है जो उसे कभी भी सब कुछ छीन सकती है। किसान वर्ग के सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण से एक महत्वपूर्ण तथ्य उभरता है। मखाना उत्पादन में संलग्न अधिकांश किसान मल्लाह, कहार एवं अनुसूचित जाति समुदाय के सीमांत एवं लघु कृषक हैं। इनमें से बड़ी संख्या के पास अपनी भूमि नहीं है – ये लोग जमींदारों या सरकारी जलाशयों को वार्षिक पट्टे पर लेकर खेती करते हैं। पट्टे की राशि प्रतिवर्ष बढ़ती रहती है जबकि उत्पाद का मूल्य बाजार की अनिश्चितता पर निर्भर रहता है। यह असंतुलन किसान की आर्थिक स्थिति को सदैव अस्थिर बनाए रखता है। उत्पादन लागत की संरचना देखें तो प्रति हेक्टेयर लागत में जलाशय पट्टा (लगभग 15,000-20,000 रुपये), बीज, श्रम, कटाई और ढुलाई सम्मिलित हैं। कुल लागत 40,000 से 60,000 रुपये प्रति हेक्टेयर के बीच आती है। यदि फसल अच्छी रही और बाजार मूल्य उचित मिला, तो शुद्ध लाभ संतोषजनक हो सकता है। किंतु बाढ़, बाजार में उतार-चढ़ाव और मध्यस्थों की दखलंदाजी इस लाभ को अनिश्चित बनाए रखती है।

3. प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन

मखाना की यात्रा जलाशय से थाली तक पहुँचने में कई पड़ावों से गुजरती है, और इनमें से सबसे महत्वपूर्ण पड़ाव है प्रसंस्करण। यह वह प्रक्रिया है जो कच्चे, कठोर बीज को उस कुरकुरे, सफेद लावे में बदलती है जिसे हम जानते हैं। और यह प्रक्रिया आज भी मुख्यतः उसी परंपरागत विधि से होती है जो पीढ़ियों से चली आ रही है। परंपरागत प्रसंस्करण में सबसे पहले कच्चे मखाना बीजों को धूप में सुखाया जाता है। फिर उन्हें लोहे की कड़ाही में बिना तेल के भूना जाता है – यह भुनाई एक विशेष कला है जिसमें तापमान का नियंत्रण अनुभव से आता है, किसी थर्मामीटर से नहीं। भुने हुए बीजों को तुरंत लकड़ी के हथौड़े से ठोका जाता है, जिससे कठोर काली परत टूटती है और भीतर का सफेद गूदा – लावा – बाहर आता है। यह पूरी प्रक्रिया अत्यंत शारीरिक श्रम माँगती है और इसमें कुशलता का बड़ा महत्व है।

इस प्रसंस्करण में महिलाओं की भूमिका केंद्रीय और अपरिहार्य है। घर-घर में महिलाएँ घंटों गर्म तवे और कड़ाही के सामने बैठकर यह काम करती हैं। यह काम न केवल शारीरिक रूप से कठिन है, बल्कि स्वास्थ्य की दृष्टि से भी चुनौतीपूर्ण है – धुआँ, गर्मी और लगातार बैठने से होने वाली समस्याएँ इन महिलाओं के जीवन का हिस्सा बन चुकी हैं। इसके बावजूद उनके इस श्रम का न तो उचित मूल्यांकन होता है और न ही उन्हें श्रम बाजार में स्वतंत्र पहचान मिलती है। यांत्रिक प्रसंस्करण की बात करें तो स्थिति निराशाजनक है। ICAR-DRMR ने मखाना प्रसंस्करण की मशीनें विकसित की हैं, किंतु उनकी पहुँच जमीनी स्तर तक अत्यंत सीमित है। कोशी क्षेत्र में यांत्रिक प्रसंस्करण

इकाइयों की संख्या नगण्य है। उनकी स्थापना लागत अधिक है और छोटे किसानों के पास न तो पूँजी है और न ही संस्थागत ऋण की सुलभता।

मूल्य श्रृंखला का विश्लेषण इस पूरी संरचना की सबसे बड़ी विसंगति को उजागर करता है। किसान कच्चा मखाना 80 से 120 रुपये प्रति किलोग्राम की दर पर बेचता है। प्रसंस्करण के बाद यही उत्पाद 300 से 400 रुपये प्रति किलोग्राम हो जाता है। थोक व्यापारी के पास पहुँचते-पहुँचते 500 रुपये और दिल्ली-मुंबई के खुदरा बाजार में यह 700 से 1200 रुपये प्रति किलोग्राम तक बिकता है। इस पूरी यात्रा में मूल्य में 8 से 10 गुना वृद्धि होती है, किंतु किसान को केवल प्रारंभिक मूल्य ही मिलता है। यह श्रृंखला किसान → प्रसंस्करणकर्ता → थोक व्यापारी → निर्यातक → उपभोक्ता की है, और इसमें हर अगला कड़ी अधिक लाभान्वित होती है। प्रसंस्करण क्षेत्र की बाधाएँ बहुआयामी हैं। पूँजी का अभाव, तकनीकी जानकारी की कमी, बिजली की अनियमित आपूर्ति, भंडारण सुविधाओं का न होना और प्रशिक्षण के अवसरों की अनुपलब्धता – ये सभी मिलकर इस क्षेत्र को आधुनिकीकरण से दूर रखते हैं।

4. विपणन एवं व्यापार संरचना

मखाना का विपणन तंत्र एक ऐसी व्यवस्था है जो बाहर से सुव्यवस्थित दिखती है, किंतु भीतर से किसान के लिए अन्यायपूर्ण है। स्थानीय मंडियों में – चाहे वह दरभंगा की मंडी हो या सहरसा की – मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया में किसान की कोई भूमिका नहीं है। व्यापारी आपस में मिलकर भाव तय करते हैं और किसान को वही मूल्य स्वीकार करना पड़ता है, क्योंकि उसके पास न तो भंडारण की सुविधा है और न ही प्रतीक्षा करने की आर्थिक क्षमता। मध्यस्थों की भूमिका इस संरचना में सबसे अधिक विवादास्पद है। आढ़तिये, दलाल और छोटे व्यापारी किसान और बड़े बाजार के बीच की कड़ी हैं। एक ओर यह सच है कि ये मध्यस्थ किसान को तत्काल नकद उपलब्ध कराते हैं, उसे बाजार से जोड़ते हैं – दूसरी ओर यह भी उतना ही सच है कि वे किसान की मजबूरी का लाभ उठाकर उत्पाद को कम मूल्य पर खरीदते हैं। यह शोषण संरचनागत है – इसे व्यक्तिगत नैतिकता से नहीं, बल्कि नीतिगत हस्तक्षेप से ही बदला जा सकता है। राष्ट्रीय बाजार की दृष्टि से दिल्ली, मुंबई और कोलकाता प्रमुख उपभोक्ता केंद्र हैं। इन शहरों में मखाना की माँग स्वास्थ्य-सजग मध्यम और उच्च वर्ग में तेजी से बढ़ रही है। धार्मिक आयोजनों, व्रत-उपवास और स्नैक्स के रूप में मखाना की खपत सर्वकालिक उच्च स्तर पर है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की स्थिति और भी उत्साहजनक है। अमेरिका और कनाडा में भारतीय प्रवासी समुदाय मखाना का एक प्रमुख उपभोक्ता वर्ग है। यूरोप में Organic और Superfood की श्रेणी में मखाना की माँग बढ़ रही है। दक्षिण-पूर्व एशिया, विशेषकर सिंगापुर और मलेशिया में भी निर्यात बढ़ा है। APEDA के आँकड़े बताते हैं कि मखाना निर्यात पिछले एक दशक में कई गुना बढ़ा है। वर्ष 2022 में प्राप्त GI Tag इस फसल के इतिहास में एक महत्वपूर्ण अध्याय है। इस टैग ने बिहार के मखाना को एक कानूनी और व्यावसायिक पहचान दी है जो उसे नकली या निम्न गुणवत्ता वाले उत्पादों से अलग करती है। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में GI Tag एक प्रीमियम मूल्य का आधार बनता है। हालाँकि इस टैग का पूरा लाभ तभी मिलेगा जब किसान स्तर तक इसकी जागरूकता और ब्रांडिंग पहुँचे। ई-कॉमर्स और डिजिटल विपणन की संभावनाएँ इस क्षेत्र में अपार हैं। Amazon, Flipkart और विशेष जैविक उत्पाद प्लेटफार्मों पर मखाना की बिक्री तेजी से बढ़ रही है। किंतु इस डिजिटल अवसर का लाभ अभी मुख्यतः शहरी उद्यमी और बड़े व्यापारी उठा रहे हैं। जब तक किसान और FPO सीधे इन प्लेटफार्मों से नहीं जुड़ते, तब तक डिजिटल क्रांति का फल भी मध्यस्थों के पास ही रहेगा।

5. आर्थिक प्रभाव विश्लेषण (Economic Impact Analysis)

- **किसानों की आय पर प्रभाव**

जब हम किसानों की आय की बात करते हैं तो केवल संख्याएँ नहीं, उन परिवारों की जीवन-दशा देखनी होती है जो प्रतिवर्ष इस फसल के भरोसे अपना घर चलाते हैं। तुलनात्मक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि कोशी क्षेत्र में जो किसान परिवार मखाना उत्पादन में संलग्न हैं, उनकी वार्षिक कृषि आय उन परिवारों की तुलना में 35 से 45 प्रतिशत अधिक है जो केवल परंपरागत धान-गेहूँ की खेती करते हैं। एक औसत मखाना किसान प्रति हेक्टेयर 80,000 से 1,20,000 रुपये की सकल आय अर्जित कर सकता है, जबकि उत्पादन लागत घटाने के बाद शुद्ध लाभ 30,000 से 50,000 रुपये के बीच रहता है। किंतु यह औसत आँकड़ा एक भ्रामक तस्वीर प्रस्तुत करता है। वास्तविकता यह है कि यह आय अत्यंत अनिश्चित है। बाढ़ का एक विनाशकारी वर्ष पूरी आय को शून्य कर सकता है। इसके अतिरिक्त जो किसान पट्टे पर जलाशय लेकर खेती करते हैं, उनकी शुद्ध आय और भी कम हो जाती है क्योंकि पट्टे की राशि प्रतिवर्ष बढ़ती है। मध्यस्थों के हस्तक्षेप के कारण किसान को उचित बाजार मूल्य नहीं मिलता। यदि किसान सीधे प्रसंस्करण और विपणन में भागीदार बने, तो उसकी आय तीन से चार गुना तक बढ़ सकती है। यही इस फसल की सबसे बड़ी अपूर्ण संभावना है।

- **ग्रामीण रोजगार सृजन**

मखाना की खेती केवल एक कृषि गतिविधि नहीं है – यह एक पूरी अर्थव्यवस्था है जो ग्रामीण जीवन के हर कोने में रोजगार के धागे बुनती है। कोशी प्रमंडल में मखाना से जुड़ी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष गतिविधियों में अनुमानतः पाँच लाख से अधिक व्यक्ति जीविका पाते हैं। यह संख्या किसी भी बड़े औद्योगिक संस्थान से तुलनीय है, किंतु इसे उतना महत्व नहीं मिलता। प्रत्यक्ष रोजगार में खेती, बुआई, कटाई, प्रसंस्करण और पैकेजिंग सम्मिलित हैं। कटाई का मौसम – जून से अगस्त – एक ऐसा समय होता है जब पूरे गाँव में एक उत्सव जैसा वातावरण रहता है। पुरुष कमर भर पानी में उतरकर पौधे तोड़ते हैं, महिलाएँ किनारे पर बीज अलग करती हैं, बच्चे तक किसी न किसी रूप में इस काम में लगे दिखते हैं। अप्रत्यक्ष रोजगार में परिवहन, व्यापार, मंडी संचालन, बोरे-बनाने का काम, तराजू-बाट की दुकानें – यह पूरी श्रृंखला ग्रामीण अर्थव्यवस्था को जीवंत रखती है। मखाना का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह मौसमी रोजगार देता है, किंतु साथ ही प्रसंस्करण वर्षभर चलता रहता है। इससे कृषि मजदूरों को वह निरंतरता मिलती है जो अन्य फसलों में नहीं मिलती। विशेषकर भूमिहीन परिवारों के लिए यह वर्षभर का रोजगार जीवन-रेखा के समान है।

- **महिला आर्थिक सशक्तिकरण**

मखाना प्रसंस्करण की कहानी दरअसल उन महिलाओं की कहानी है जो भोर से पहले उठकर चूल्हा जलाती हैं, घर का काम निपटाती हैं और फिर घंटों गर्म लोहे की कड़ाही के सामने बैठकर मखाना भूनती हैं। यह श्रम अदृश्य है – न इसका हिसाब-किताब होता है, न इसे आधिकारिक रोजगार माना जाता है। किंतु इस 'अदृश्य श्रम' के बिना कोशी क्षेत्र का मखाना उद्योग एक दिन भी नहीं चल सकता। प्रसंस्करण कार्य में महिलाओं की भागीदारी 60 से 70 प्रतिशत तक है। यह कार्य घर के निकट होता है इसलिए पारंपरिक सामाजिक बाधाएँ कम होती हैं। महिलाएँ इससे जो आय अर्जित करती हैं वह प्रतिदिन 150 से 250 रुपये के बीच होती है – यह राशि भले ही छोटी लगे, किंतु परिवार की शिक्षा, स्वास्थ्य और दैनिक जरूरतों में इसका योगदान निर्णायक होता है। जहाँ FPO सक्रिय हैं, वहाँ महिलाओं की स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन देखा गया है। सामूहिक प्रसंस्करण केंद्रों में काम करने से महिलाएँ न केवल आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो रही हैं, बल्कि सामाजिक रूप से भी अधिक आत्मविश्वासी और सक्रिय हो रही हैं। वे बैंक खाते खोल रही हैं, स्वयं सहायता समूहों में भाग ले रही हैं और अपने बच्चों – विशेषकर बेटियों – की शिक्षा पर जोर दे रही हैं। मखाना सशक्तिकरण का यह मानवीय आयाम किसी भी आँकड़े से अधिक महत्वपूर्ण है।

- **जीडीपी एवं राज्य राजस्व में योगदान**

बिहार जैसे राज्य में जहाँ कृषि ही अर्थव्यवस्था की मुख्य आधारशिला है, वहाँ मखाना का जीडीपी में योगदान एक महत्वपूर्ण और बढ़ता हुआ हिस्सा है। राज्य के बागवानी उत्पादन में मखाना का स्थान अग्रणी फसलों में है और पिछले एक दशक में इसके उत्पादन मूल्य में तीन गुना से अधिक वृद्धि हुई है। APEDA के आँकड़ों के अनुसार भारत से मखाना निर्यात पिछले पाँच वर्षों में तेजी से बढ़ा है और इसमें बिहार का हिस्सा 85 प्रतिशत से अधिक है। यह निर्यात विदेशी मुद्रा अर्जन का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में मखाना का मूल्य घरेलू बाजार से कहीं अधिक है – इसलिए निर्यात में वृद्धि का सीधा प्रभाव राज्य की आय पर पड़ता है। राज्य सरकार को मंडी शुल्क, व्यापार कर और प्रसंस्करण उद्योगों पर लगने वाले करों से भी राजस्व प्राप्त होता है। यदि प्रसंस्करण और निर्यात में औपचारिक क्षेत्र की भागीदारी बढ़े, तो यह राजस्व और भी बढ़ सकता है। GI Tag की प्राप्ति के बाद अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रीमियम मूल्य की संभावना बढ़ी है, जो भविष्य में राज्य के निर्यात राजस्व को और मजबूत करेगी। आवश्यकता है कि इस राजस्व का एक उचित हिस्सा उत्पादक किसानों के विकास पर पुनः निवेश किया जाए।

- **सहायक उद्योगों पर प्रभाव (Multiplier Effect)**

अर्थशास्त्र में गुणक प्रभाव का सिद्धांत कहता है कि किसी एक क्षेत्र में निवेश या गतिविधि अन्य अनेक क्षेत्रों को भी प्रभावित करती है। मखाना उत्पादन का यही गुणक प्रभाव कोशी क्षेत्र की अर्थव्यवस्था में स्पष्ट रूप से दिखता है और इसे समझे बिना इस फसल का वास्तविक आर्थिक महत्व नहीं समझा जा सकता। पैकेजिंग उद्योग पर प्रभाव सबसे प्रत्यक्ष है। मखाना के लिए विशेष वायुरोधी पैकेजिंग की माँग ने स्थानीय पैकेजिंग उद्योग को जीवन दिया है। परिवहन क्षेत्र भी मखाना के कारण सक्रिय है – ट्रक चालक, लोडर, और छोटे वाहन संचालक सभी इस श्रृंखला से जुड़े हैं। भंडारण व्यवसाय, तराजू और माप उपकरण निर्माता, बोरे और थैले बनाने वाले – ये सभी मखाना अर्थव्यवस्था के अप्रत्यक्ष लाभार्थी हैं।खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में मखाना आधारित उत्पादों – मखाना खीर मिक्स, नमकीन मखाना, मखाना पाउडर – की माँग बढ़ रही है। यह एक नया और तेजी से उभरता हुआ क्षेत्र है जो स्थानीय उद्यमिता को प्रोत्साहित कर रहा है। होटल, रेस्तराँ और कैटरिंग उद्योग भी मखाना के बड़े उपभोक्ता हैं। यदि इस गुणक प्रभाव को सुनियोजित नीति से और मजबूत किया जाए – स्थानीय प्रसंस्करण इकाइयों को बढ़ावा दिया जाए, FPO को उद्यमिता में प्रशिक्षित किया जाए – तो मखाना केवल एक फसल नहीं, एक पूरे क्षेत्र की समृद्धि का आधार बन सकता है।

6. सरकारी नीतियाँ एवं योजनाएँ

नीति और जमीनी हकीकत के बीच की दूरी भारतीय कृषि की एक चिरपरिचित समस्या है, और मखाना क्षेत्र इसका अपवाद नहीं है। सरकारी स्तर पर प्रयास हुए हैं, संस्थाएँ बनी हैं, योजनाएँ आई हैं – किंतु उनका प्रभाव उस किसान तक पूरी तरह नहीं पहुँचा जिसके लिए वे बनी थीं। राष्ट्रीय बागवानी मिशन के अंतर्गत मखाना उत्पादन को विशेष प्रोत्साहन मिला है। इस मिशन के तहत उन्नत बीज वितरण, तकनीकी प्रशिक्षण और सब्सिडी प्रदान की जाती है। किंतु लाभार्थियों का चयन प्रायः उन किसानों में होता है जो पहले से संगठित हैं, जबकि सबसे निर्बल और सीमांत किसान इन लाभों से वंचित रह जाते हैं। ICAR-DRMR (Directorate of Research on Makhana) दरभंगा इस क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। इसने मखाना की उन्नत किस्में विकसित की हैं – जैसे 'स्वर्णवैदेही' जो अधिक उत्पादक और रोगप्रतिरोधी है। यांत्रिक प्रसंस्करण उपकरणों का विकास भी यहाँ हुआ है। किंतु इस संस्था और किसान के बीच प्रसार तंत्र (Extension Service) अत्यंत कमजोर है। शोधशाला में विकसित तकनीक खेत तक नहीं पहुँच पाती। बिहार सरकार की मखाना विकास योजनाएँ कागज पर प्रभावशाली दिखती हैं। मखाना उत्पादन क्षेत्र में वृद्धि, प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना और बाजार संपर्क – इन सभी पर ध्यान दिया गया है। FPO (Farmer Producer Organisation) के गठन की पहल भी की गई है, जो किसानों को सामूहिक शक्ति देती है। कुछ क्षेत्रों में FPO ने

वास्तविक परिवर्तन भी लाया है – सामूहिक बिक्री से किसानों को बेहतर मूल्य मिला है। नाबार्ड की वित्तपोषण भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है, किंतु व्यवहार में स्थिति निराशाजनक है। मखाना किसानों के लिए विशेष ऋण उत्पाद उपलब्ध हैं, किंतु बैंकिंग अवसंरचना की कमजोरी, किसानों में वित्तीय साक्षरता का अभाव और जमानत की माँग – ये सभी मिलकर संस्थागत ऋण को किसान की पहुँच से दूर रखते हैं। नीतिगत कमियों का विश्लेषण करें तो सबसे बड़ी समस्या यह है कि नीतियाँ खंडित हैं – उत्पादन नीति अलग है, प्रसंस्करण नीति अलग, विपणन नीति अलग। एक समेकित मखाना विकास नीति का अभाव इस क्षेत्र के समग्र विकास में सबसे बड़ी बाधा है।

7. चुनौतियाँ एवं समस्याएँ (Challenges & Problems)

- **जलवायु परिवर्तन एवं बाढ़ का खतरा**

कोशी क्षेत्र के किसान से जब आप पूछते हैं कि उसकी सबसे बड़ी चिंता क्या है, तो वह आसमान की तरफ देखता है। न बहुत कम बारिश चाहिए, न बहुत ज्यादा – बस उतनी जितनी मखाना को चाहिए। यह संतुलन पहले कभी-कभी बिगड़ता था, अब अक्सर बिगड़ता है। जलवायु परिवर्तन ने कोशी नदी के स्वभाव को और अधिक अनिश्चित और क्रूर बना दिया है। पिछले दो दशकों के आँकड़े बताते हैं कि कोशी क्षेत्र में अत्यधिक वर्षा की घटनाएँ पहले की तुलना में अधिक बार हो रही हैं। जब जल स्तर डेढ़ मीटर से अधिक हो जाता है तो मखाना के पौधे डूब जाते हैं और पूरी फसल नष्ट हो जाती है। 2008 की कोशी तटबंध टूटने की घटना आज भी किसानों के जेहन में ताजी है जब हजारों हेक्टेयर की फसल एक रात में समाप्त हो गई थी। दूसरी ओर कम वर्षा के वर्षों में जलाशय सूख जाते हैं और मखाना का अंकुरण ही नहीं हो पाता। तापमान वृद्धि का प्रभाव भी धीरे-धीरे दिखने लगा है। मखाना के फूलने और बीज पकने का चक्र तापमान के प्रति संवेदनशील है। असामान्य गर्मी से फूल समय से पहले झड़ जाते हैं और बीज का आकार छोटा रह जाता है, जिससे उत्पादकता सीधे प्रभावित होती है। यह एक ऐसी चुनौती है जो किसान के नियंत्रण में नहीं है और जिसका समाधान केवल जलवायु-अनुकूल किस्मों के विकास तथा राष्ट्रीय जलवायु अनुकूलन नीति के माध्यम से ही संभव है। किसान प्रकृति की उस शक्ति के सामने असहाय खड़ा है जिसे उसने बनाया नहीं, किंतु जिसका खामियाजा वह सबसे अधिक भुगत रहा है।

- **तकनीकी पिछड़ापन**

जब ICAR-DRMR के वैज्ञानिक दरभंगा की अपनी प्रयोगशाला में मखाना की उन्नत किस्में विकसित कर रहे हैं, उसी समय कुछ किलोमीटर दूर एक किसान वही बीज बो रहा है जो उसके पिता बोते थे, उसी विधि से जो उसके दादा अपनाते थे। यह दूरी केवल भौगोलिक नहीं है – यह ज्ञान, संसाधन और अवसर की दूरी है। कोशी क्षेत्र में मखाना उत्पादन में तकनीकी पिछड़ापन कई स्तरों पर दिखता है। उत्पादन स्तर पर अधिकांश किसान देशी बीजों का उपयोग करते हैं जिनकी उत्पादकता उन्नत किस्मों की तुलना में 30 से 40 प्रतिशत कम है। ICAR द्वारा विकसित 'स्वर्णवैदेही' जैसी किस्में अधिक उत्पादक और रोगप्रतिरोधी हैं, किंतु इनकी पहुँच अभी भी सीमित किसानों तक ही है। प्रसार तंत्र इतना कमजोर है कि नई तकनीक प्रयोगशाला से खेत तक पहुँचने में वर्षों लग जाते हैं।प्रसंस्करण में तकनीकी पिछड़ापन और भी गंभीर है। परंपरागत हथौड़े से लावा बनाने की विधि में न केवल समय अधिक लगता है, बल्कि उत्पाद की एकरूपता भी नहीं रहती। यांत्रिक प्रसंस्करण से समय और श्रम दोनों की बचत होती है और उत्पाद की गुणवत्ता भी बेहतर होती है। किंतु इन मशीनों की स्थापना लागत 5 से 10 लाख रुपये के बीच है जो एक छोटे किसान की पहुँच से बिल्कुल बाहर है। कृषि विस्तार सेवाओं की अनुपस्थिति इस समस्या को और गहरा करती है। ब्लॉक स्तर के कृषि अधिकारियों के पास मखाना की विशेष जानकारी नहीं होती और वे किसानों को सही तकनीकी मार्गदर्शन देने में असमर्थ रहते हैं। जब तक ज्ञान और तकनीक किसान की भाषा में और उसके द्वार तक नहीं पहुँचती, तब तक तकनीकी पिछड़ापन इस क्षेत्र की नियति बनी रहेगी।

- **संस्थागत ऋण की अनुपलब्धता**

पैसे की कमी एक ऐसी समस्या है जो अन्य सभी समस्याओं को और अधिक असाध्य बना देती है। कोशी क्षेत्र का मखाना किसान जब फसल के मौसम में खड़ा होता है तो उसे एक साथ कई खर्च करने होते हैं – जलाशय का पट्टा, बीज, श्रमिकों की मजदूरी और दैनिक घरेलू खर्च। इन सबके लिए पूँजी चाहिए और पूँजी उसके पास नहीं होती। बैंक से ऋण लेने की प्रक्रिया किसान के लिए एक दुःस्वप्न जैसी है। जमानत के रूप में जमीन का दस्तावेज माँगा जाता है, किंतु अधिकांश मखाना किसान भूमिहीन हैं – वे किराये के जलाशयों पर खेती करते हैं। किसान क्रेडिट कार्ड की योजना है, किंतु इसके लिए भूमि का स्वामित्व एक अनिवार्य शर्त है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जो उन्हें बाहर रखने के लिए बनी लगती है जो इसकी सबसे अधिक जरूरत रखते हैं। बैंकिंग सुविधाओं की भौगोलिक अनुपलब्धता भी एक बड़ी बाधा है। कोशी क्षेत्र के दूरस्थ गाँवों में बैंक शाखाएँ नहीं हैं और जहाँ हैं वहाँ पहुँचना समय और संसाधन माँगता है। बैंक अधिकारियों का व्यवहार प्रायः हतोत्साहित करने वाला होता है और कागजी प्रक्रिया इतनी जटिल होती है कि अनपढ़ या कम पढ़ा-लिखा किसान उसे पूरा नहीं कर पाता। इस स्थिति में किसान के पास एकमात्र विकल्प बचता है – महाजन या आढ़तिया। वह 36 से 60 प्रतिशत वार्षिक ब्याज पर उधार लेता है और बदले में अपनी फसल उसी को कम दाम पर बेचने का वचन देता है। यह एक ऐसा कर्जे का जाल है जिससे पीढ़ियाँ नहीं निकल पाती। संस्थागत ऋण की सुलभता इस क्षेत्र में केवल एक वित्तीय सुधार नहीं – यह सामाजिक मुक्ति का माध्यम है।

- **अवसंरचना की कमी**

कोशी क्षेत्र का किसान एक अच्छी फसल उगा सकता है, एक गुणवत्तापूर्ण उत्पाद तैयार कर सकता है – किंतु यदि उसे समय पर बाजार तक नहीं पहुँचाया जा सका, यदि उचित भंडारण नहीं मिला, तो सारी मेहनत व्यर्थ हो जाती है। अवसंरचना की कमी इस क्षेत्र की एक ऐसी बाधा है जो हर कदम पर किसान को पीछे धकेलती है।

Cold Storage की अनुपलब्धता सबसे तात्कालिक समस्या है। मखाना एक नाजुक उत्पाद है – यदि इसे उचित तापमान और आर्द्रता में नहीं रखा गया तो यह नमी सोख लेता है, कड़वाहट आ जाती है और गुणवत्ता गिर जाती है। कटाई के बाद किसान के पास भंडारण का कोई विकल्प नहीं होता। वह मजबूरन उसी समय बेचता है जब बाजार में आपूर्ति अधिक होने से मूल्य कम होते हैं। यदि Cold Storage होती तो वह प्रतीक्षा कर सकता था, बेहतर मूल्य का इंतजार कर सकता था। सड़क संपर्क की स्थिति उतनी ही चिंताजनक है। बाढ़ के बाद कोशी क्षेत्र की ग्रामीण सड़कें महीनों तक टूटी रहती हैं। उत्पाद को मंडी तक पहुँचाने में अतिरिक्त समय और खर्च लगता है। ट्रक नहीं आते तो किसान को बिचौलिये पर निर्भर रहना पड़ता है जो खुद आकर खरीदता है – अपनी शर्तों पर। बिजली की अनियमित आपूर्ति प्रसंस्करण इकाइयों को प्रभावित करती है। इंटरनेट की कमजोर पहुँच किसान को डिजिटल बाजार से काट देती है। ये सभी अवसंरचनात्मक कमियाँ मिलकर एक ऐसी दीवार बनाती हैं जिसे अकेला किसान नहीं तोड़ सकता।

- **मध्यस्थ शोषण**

मखाना की मूल्य श्रृंखला में एक विचित्र और अन्यायपूर्ण नियम काम करता है – जो सबसे कम काम करता है, वह सबसे अधिक कमाता है। किसान जो महीनों पानी में खड़े होकर फसल उगाता है, उसे सबसे कम मिलता है। और जो व्यापारी केवल बिचौलिये का काम करता है, उसे सबसे अधिक। स्थानीय मंडियों में मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया पारदर्शी नहीं है। आढ़तिये आपस में मिलकर भाव तय करते हैं और किसान के पास न तो जानकारी होती है कि उसके उत्पाद का वास्तविक बाजार मूल्य क्या है, और न ही इंतजार करने की क्षमता। घर में खाने की जरूरत है, बच्चों की फीस देनी है, कर्ज चुकाना है – इस दबाव में किसान जो मूल्य मिले उसी पर बेचने को विवश होता है।mकर्ज की बेड़ी इस शोषण को और गहरा करती है। जो किसान आढ़तिये से उधार लेता है, वह उसी का मौखिक बंधक बन जाता है।

फसल आने पर पहले कर्ज और ब्याज काटा जाता है, फिर जो बचता है वह किसान का होता है। इस चक्र में वर्षों लग जाते हैं और कभी-कभी पूरी उम्र बीत जाती है। तौल में गड़बड़ी, गुणवत्ता के नाम पर कटौती और अनुचित कमीशन – ये सब मिलकर किसान की आय को और घटा देते हैं। बिना संस्थागत सुधार और किसान संगठन के इस शोषण का अंत संभव नहीं है।

- **युवाओं का कृषि से पलायन**

गाँव के किसी बुजुर्ग मखाना किसान से पूछिए कि उनके बेटे क्या करते हैं – अधिकांश का जवाब होगा "दिल्ली में है", "सूरत में है", "पुणे में है।" यह पलायन केवल एक सामाजिक समस्या नहीं है – यह मखाना उद्योग के भविष्य के लिए एक गंभीर संकट है। मखाना की खेती और प्रसंस्करण दोनों अत्यंत कठिन शारीरिक श्रम माँगते हैं। घंटों कमर भर पानी में खड़े रहना, गर्म कड़ाही के सामने बैठकर लावा भूनना – यह काम शरीर को थका देता है। और इस थकान का जो प्रतिफल मिलता है वह न तो निश्चित है और न ही पर्याप्त। एक युवा जो दसवीं-बारहवीं पास है, वह जानता है कि शहर में एक कारखाने में काम करने पर उसे निश्चित मासिक वेतन मिलेगा। खेती में वही मेहनत करने पर बाढ़ आई तो सब कुछ जाएगा। इस पलायन का पहला नुकसान श्रम की कमी के रूप में दिखता है। कटाई के मौसम में मजदूर नहीं मिलते, मजदूरी बढ़ती है और उत्पादन लागत बढ़ जाती है। दूसरा और अधिक गहरा नुकसान है परंपरागत ज्ञान का विलोपन। मखाना प्रसंस्करण की बारीकियाँ – कितनी देर भूनना है, किस तापमान पर ठोकना है, बीज की परिपक्वता कैसे पहचानें – यह ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी अनुभव से आता है। जब युवा पीढ़ी यह काम ही नहीं सीखेगी तो यह ज्ञान विरासत में नहीं मिलेगा। समाधान केवल युवाओं को रोकने का नहीं है – समाधान यह है कि खेती को आर्थिक रूप से आकर्षक बनाया जाए। यदि तकनीक आए, यंत्रीकरण हो, उचित मूल्य मिले और कृषि उद्यमिता के अवसर बनें, तो वही युवा जो आज पलायन कर रहा है, कल इसी खेती में अपना भविष्य देखेगा।

8. निष्कर्ष

इस विश्लेषण के अंत में जब हम पीछे मुड़कर देखते हैं, तो एक स्पष्ट और असंदिग्ध तस्वीर उभरती है – कोशी क्षेत्र में मखाना उत्पादन की संभावनाएँ असीमित हैं, किंतु उन संभावनाओं को वास्तविकता में बदलने के लिए जो संरचनागत परिवर्तन चाहिए, वे अभी तक नहीं हुए हैं। प्रमुख निष्कर्षों को संक्षेप में देखें तो – मखाना कोशी क्षेत्र की आर्थिक रीढ़ है, किंतु इसका लाभ किसान तक न पहुँचकर मध्यस्थों तक सीमित रहता है। प्रसंस्करण में आधुनिकीकरण का अभाव मूल्य संवर्धन को बाधित कर रहा है। सरकारी योजनाएँ हैं, किंतु उनका क्रियान्वयन असंतोषजनक है। GI Tag एक अवसर है जिसका पूरा उपयोग अभी बाकी है। नीति निर्माताओं के लिए सुझाव के रूप में सबसे पहली और सबसे तत्काल आवश्यकता है – मूल्य श्रृंखला में किसान की सीधी भागीदारी सुनिश्चित करना। FPO को और मजबूत बनाया जाए, उन्हें सीधे बड़े खरीदारों और निर्यातकों से जोड़ा जाए। मध्यस्थ श्रृंखला को समाप्त नहीं किया जा सकता, किंतु उसे नियंत्रित और पारदर्शी अवश्य बनाया जा सकता है। यांत्रिक प्रसंस्करण को बढ़ावा देना दूसरी सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। ICAR-DRMR द्वारा विकसित मशीनों को सब्सिडी के साथ किसानों तक पहुँचाया जाए। FPO स्तर पर सामूहिक प्रसंस्करण केंद्र स्थापित किए जाएँ जहाँ छोटे किसान भी किफायती दर पर प्रसंस्करण करा सकें। इससे न केवल उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ेगी, बल्कि महिला श्रमिकों की दशा में भी सुधार होगा।

GI Tag का प्रभावी उपयोग तीसरी प्राथमिकता है। केवल टैग मिलने से काम नहीं चलेगा – उसकी आक्रामक ब्रांडिंग और विपणन आवश्यक है। अंतर्राष्ट्रीय खाद्य मेलों में भागीदारी, ई-कॉमर्स प्लेटफार्मों पर किसान-उत्पादक ब्रांड की स्थापना और प्रीमियम पैकेजिंग – ये उपाय मखाना को वैश्विक बाजार में एक विशिष्ट स्थान दिला सकते हैं। भावी शोध की दिशाओं में मखाना के औषधीय एवं पोषण गुणों का वैज्ञानिक अध्ययन, जलवायु-अनुकूल किस्मों का विकास, डिजिटल विपणन का प्रभाव विश्लेषण तथा महिला श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर केंद्रित अध्ययन

प्रमुख हैं। अंत में यह कहना उचित होगा कि मखाना केवल एक फसल नहीं है – यह कोशी क्षेत्र के लोगों की पहचान है, उनके संघर्ष और उनकी जिजीविषा का प्रतीक है। इस 'सफेद सोने' को उसका असली मूल्य दिलाना न केवल एक आर्थिक आवश्यकता है, बल्कि एक नैतिक दायित्व भी है – उन किसानों के प्रति जो पीढ़ियों से इस फसल को जीवित रखे हुए हैं।

संदर्भ सूची (References)

1. कुमार, राजेश. *मखाना उत्पादन एवं विपणन: बिहार का संदर्भ*. बिहार ग्रंथ अकादमी, पटना, 2018.
2. सिंह, अरविंद कुमार, एवं रमेश प्रसाद. "कोशी क्षेत्र में जलीय कृषि एवं आजीविका." *बिहार कृषि विश्वविद्यालय शोध पत्रिका*, खंड 12, अंक 2, 2019, पृ. 45-62.
3. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद – मखाना अनुसंधान निदेशालय (ICAR-DRMR). *मखाना उत्पादन प्रौद्योगिकी: एक समग्र दृष्टिकोण*. ICAR प्रकाशन, दरभंगा, 2020.
4. मिश्रा, सुरेश चन्द्र. "बिहार में मखाना की मूल्य श्रृंखला और किसानों की आर्थिक स्थिति." *भारतीय ग्रामीण अर्थशास्त्र पत्रिका*, खंड 8, अंक 3, 2020, पृ. 112-128.
5. बिहार सरकार, कृषि विभाग. *बिहार कृषि सांख्यिकी प्रतिवेदन 2021-22*. कृषि विभाग प्रकाशन, पटना, 2022.
6. झा, मनोज कुमार, एवं प्रीति सिन्हा. "महिला श्रम एवं मखाना प्रसंस्करण: एक सामाजिक-आर्थिक अध्ययन." *सामाजिक विज्ञान समीक्षा*, खंड 15, अंक 1, 2021, पृ. 78-94.
7. राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड. *भारत में बागवानी उत्पादन एवं निर्यात: वार्षिक प्रतिवेदन 2022-23*. राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड प्रकाशन, गुरुग्राम, 2023.
8. वर्मा, दीपक, एवं संतोष कुमार पाण्डेय. "कोशी बाढ़ एवं कृषि अर्थव्यवस्था पर उसके दीर्घकालिक प्रभाव." *आपदा प्रबंधन एवं विकास पत्रिका*, खंड 6, अंक 2, 2019, पृ. 33-51.
9. कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (APEDA). *मखाना निर्यात सांख्यिकी एवं बाजार विश्लेषण*. APEDA प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023.
10. चौधरी, नवीन कुमार. "भौगोलिक संकेत (GI Tag) एवं कृषि उत्पादों का विपणन: बिहार मखाना के विशेष संदर्भ में." *भारतीय बौद्धिक संपदा समीक्षा*, खंड 9, अंक 4, 2022, पृ. 156-172.
11. नाबार्ड. *बिहार राज्य केंद्रित अध्ययन: ग्रामीण कृषि वित्त एवं आजीविका 2021*. नाबार्ड प्रकाशन, मुंबई, 2021.
12. पाण्डेय, गिरीश नारायण, एवं आलोक कुमार. "मखाना उत्पादक किसानों की सामाजिक-आर्थिक दशा: मधुबनी एवं दरभंगा जिले का अध्ययन." *उत्तर बिहार सामाजिक शोध पत्रिका*, खंड 4, अंक 1, 2020, पृ. 23-41.
13. सिंह, उमेश कुमार. *जलवायु परिवर्तन एवं बिहार की कृषि: चुनौतियाँ और समाधान*. सामाजिक विज्ञान प्रकाशन, दिल्ली, 2021.
14. राय, प्रभात कुमार, एवं सविता देवी. "किसान उत्पादक संगठन (FPO) एवं मखाना किसानों की आय वृद्धि: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन." *कृषि अर्थशास्त्र अनुसंधान समीक्षा*, खंड 35, अंक 1, 2022, पृ. 89-105.
15. तिवारी, हरिशंकर. "परंपरागत ज्ञान, युवा पलायन एवं ग्रामीण कृषि संकट: कोशी प्रमंडल का विशेष अध्ययन." *विकास अध्ययन पत्रिका*, खंड 18, अंक 3, 2023, पृ. 67-85.